RESEARCH PAPER | Literature | Volume : 6 | Issue : 2 | FEBRUARY 2016 | ISSN - 2249-555X

Brahamand in Puran and Jinagam

KEYWORDS

Prof Dr B L Sethi
M.Phil, Ph.D, D.Litt Director, Trilok Institutute of higer Sturdies and Research ,Hotel OM Tower, Church Road M I Road, Jaipur- 302001

Abhilasha Jaiman
Research Scholar, University of Rajasthan

पुराण एवं जिनागम में सम्यग्दर्शन की बहुत महिमा गायी गयी है क्योंकि मुक्ति के मार्ग में सम्यग्दर्शन का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह मुक्ति महल की प्रथम सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चरित्र का सम्यक् होना संभव नहीं है।

सम्यक् ज्ञान :
सम्यकदर्शन से यक्त ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते है। आत्मानुभूति सहित व्यक्ति का समस्त ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। यदि उसे आत्मानुभूति प्रगट नहीं हुई तो उसका समस्त ज्ञान मिथ्या ज्ञान ही कहा जायेगा।
जीव आदि सप्त पदार्थों का संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय से रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।
सम्यग्ज्ञान के आठ अंग :
1. व्यंजनाचार – शब्दों का निर्दोष उच्चारण करना
2. अर्थाचार – जिस वाक्य का जो अर्थ होता है उसी का अवधारणा– निश्चय करना।
3. उभयाचार – अर्थ और शब्द दोनों का जानना।
4. कालाचार – उत्तम योग्य काल में पठन पाठन।
5. विनयाचार – शुद्ध जल से हाथ पांव धोकर शुद्ध स्थान में बैठकर शास्त्राध्ययन करना।
6. उपधानाचार – चित्त को स्थिर कर सावधानी से शास्त्र की उपासना करना।
7. बहुमानाचार – शास्त्र और शिक्षक का पूर्ण आदर करना।
8. अनिहन्वाचार – जिस गुरू से जिस शास्त्र से विद्या प्राप्त की उनके नाम को नहीं छिपाना।

ज्ञान का बड़ा विस्तृत वर्णन जैन पुराणों में उपलब्ध है और इसके पाँच भेद स्वीकार किये जाते हैं परन्तु इन पाँचों प्रकार के ज्ञानों में अन्तिम अर्थात् केवल ज्ञान को ही सर्वोपरि ज्ञान स्वीकार किया जाता है।
ज्ञान प्रभेद :
1. मतिज्ञान – 5 इन्द्रिय और मन द्वारा ज्ञान प्राप्ति।
2. श्रुतज्ञान – मतिज्ञान के द्वारा जाने गये पदार्थ को विशेष रूप से जानना
3. अवधि ज्ञान – जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा सहित भविष्य को जानना।
4. मनःपर्याय ज्ञान – इन्द्रिय या मन की सहायता के बिना ही दूसरे पुरूष के मन में स्थित पदार्थों को प्रत्यक्ष जानता है।
5. केवल ज्ञान – समस्त द्रव्य और उनकी सर्व पदार्थों को एक साथ प्रत्यक्ष जानने वाले को।

सम्यक् चरित्र :
अशुभ भाव से निवृत्ति होकर शुभभाव में प्रवृत्ति को भी व्यवहार में चरित्र कहा गया है। सम्यक चारित्र का मुक्ति मार्ग में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसके बिना जीव संसार में भटक रहा है तथा जन्म मरण का दुःख उठा रहा है। जैन दर्शन में बाह्यचार की अपेक्षा भाव शुद्धि पर विशेष बल दिया गया है।

पाँच महाव्रत :
1. अहिंसा : आत्मा में मोह राग द्वेष की उत्पत्ति ही हिंसा है। और इन भावों का आत्मा में उत्पन्न न होना ही अहिंसा है। हिंसा दो प्रकार की होती है। 1. भाव हिंसा 2. द्रव्य हिंसा
2. सत्य : जीवों को दुखदायक या मिथ्या रूप वचन बोलना असत्य कहलाता है।
3. अचौर्य : किसी भी वस्तु को प्रमत्त योग से बिना दिये हुए ग्रहण करना चोरी है। दुनिया की कई विषमताएँ और समस्याएँ शरीर श्रम नहीं करने से पैदा हुई है इसलिए अस्तेय व्रत शरीर परिश्रम द्वारा सम्पत्ति निर्माण पर जोर देता है।
4. ब्रह्मचर्य : ब्रह्मचर्य व्रत से जनसंख्या नियंत्रण के साथ–साथ समाज में सदाचार की स्थापना तथा योग्य, स्वस्थ व समर्थ नागरिकों के निर्माण में महान योगदान मिलता है।
5. अपरिग्रह : वस्तुओं के प्रति ममत्व, मूर्च्छा और आसक्ति ही परिग्रह है। परिग्रह का त्याग ही अपरिग्रह कहलाता हैं

परिग्रह दो प्रकार के होते हैं : आभ्यन्तर और ब्राह्म।
आभ्यन्तर – 14 प्रकार के होते है। (मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (ग्लानि), स्त्रीवेद, पुरूषवेद और नपुसंग वेद।

ब्राह्म : 10 प्रकार के होते है : क्षेत्र (प्लॉट), वास्तु, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, यान, शय्यासन, कुप्य, भांड।
तत्व :
मुमुक्ष के दुःखों से निवृत्ति प्राप्त करने के लिए तत्व ज्ञान की आवश्यकता है। तत्व सात है। 1. जीव 2. अजीव 3. आस्रव 4. बन्ध 5. संवर 6. निर्जरा 7. मोक्ष

पुण्य और पाप, ये दोनो बन्ध तत्व ही के अन्तर्गत होने के कारण पृथक तत्व रूप में परिगणित नहीं है। इन्हें अलग मानने से नौ पदार्थ हो जाते है।
1. जीव : जीव तत्व चेतना लक्षण वाला है। आत्मा में स्वभावतः वीतरागता, चेतना, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुण विद्यमान है पर संयोग से राग, द्वेष, तृष्णा, दुःख आदि विकार आत्मा में निहित है।

अतः आत्मा के यथार्थ स्वरूप द्वारा ही विकारी और पर संयोगी प्रवृत्ति को दूर कर उसे शुद्ध और निर्मल बनाया जा सकता है। जीव का वर्गीकरण मुक्ति, योग्यता, वर्तमान स्थिति, अवस्था विशेष एवं इन्द्रिय संवेदन के आधार पर किया गया है। प्रथम प्रकार की अपेक्षा जीव के दो भेद है : 1. भव्य – मुक्ति प्राप्त करने की योग्यता हो। 2. अभव्य – इस प्रकार की योग्यता न हो।

वर्तमान स्थिति की अपेक्षा भी जीव के दो भेद है : –
1. संसारी – कर्मबद्ध, एक गति से दूसरी गति से जन्म ग्रहण करता है और मरण को प्राप्त करता है।
2. मुक्त – कर्मबन्ध से छूट कर मुक्त हो चुका है।

अवस्था विशेष :
संसारी जीव चार प्रकार के है :
1. नारकी – पृथ्वी के नीचे सात नरक है उनमें जो जीव निवास करते है वे नारकी है।
2. तिर्यंच – पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़, पेड–पौधे तिर्यंच गति के जीव है।
3. मनुष्य – स्त्री और पुरूषादि मनुष्य गति है।
4. देव – ऊपर के स्वर्गों में जो निवास करते है वे देव हैं
देव, नारकी तथा मनुष्य आदि में पांच इन्द्रियां होती है पर तिर्यंचो में इन्द्रिय संवेदन की अपेक्षा जीवों के पांच भेद है।
1. जलकायिक
2. पृथ्वीकायिक
3. अग्निकायिक
4. वायुकायिक
6. वनस्पतिकायिक
जैन दर्शन के अनुसार पेड़–पौधे, जल, अग्नि, पृथ्वी और वायु में भी जीव है। जैन दर्शन में बहुजीववाद स्वीकार किया गया है तथा प्रत्येक जीव की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गयी है।
2. अजीव तत्व : अजीव अचेतना लक्षण से युक्त है। अजीव द्रव्य के पांच भेद है, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल जो वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श से युक्त है, वह पुद्गल है।

जीव और पुद्गल के समान धर्म और अधर्म द्रव्य भी दो स्वातन्त्र्य द्रव्य है। जीव और पुद्गल स्वयं गति स्वभाव वाले हैं, अतः यदि वे गति करते हैं, तो स्वयं रूकने का प्रश्न ही नहीं है। गतिशील और पुद्गलों को गमन करने में साधारण कारण होता है।
जिस प्रकार धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों की गति के लिए साधारण कारण है, उसी प्रकार जीव और पुद्गलों की स्थिति के लिए अधर्मद्रव्य साधारण कारण है। यह भी लोकाकाश के बराबर है। रूप, रस, गन्ध और शब्द से रहित अमूर्तिक और निष्क्रिय है। ये दोनों द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है।

आकाश : यह भी निष्क्रिय और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं शब्दादि से रहित होने के कारण अमूर्तिक है। पुद्गल का एक परमाणु जितने आकाश को रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। इस नाम से आकाश अनन्तप्रदेशी है। इसके दो भेद है – लोकाकाश और अलोकाकाश।
काल : यह भी अन्य द्रव्यों के समान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युंक्त है, अमूर्तिक है। यह

Volume : 6 | Issue : 2 | FEBRUARY 2016 | ISSN - 2249-555X

स्वयं परिवर्तन करते हुए अन्य द्रव्यों के परिवर्तन में सहकारी होता है।
काल के दो भेद है : निश्चय काल और व्यवहार काल।
इस प्रकार जैन दर्शन में छह द्रव्य और काल द्रव्य को छोड़ शेष पाँच अस्तिकाय कहलाते है।

3.आस्रव तत्व :
कर्मों के आगमन के द्वार को आस्रव कहा गया है। वह द्वार जिसके द्वारा जीवन में सर्वदा कर्मपुद्गलों का आगमन होता है। हम मन के द्वारा जो कुछ सोचते हैं वचन के द्वारा जो कुछ बोलते और शरीर के द्वारा जो कुछ हलन–चलन करते हैं, उससे कर्मवर्गणाएं आत्मा में संचित होती है।
जिनके भावों से कर्मों का आस्रव होता है, उन्हें भावास्रव और कर्म का आना द्रव्यास्रव कहलाता है।
शुभ आस्रव – पुण्यास्रव
अशुभ – आस्रव – पापास्रव

4. बन्ध : जीव और कर्म के प्रदेशों का परस्पर अनुप्रवेश बन्ध है। बन्ध दो प्रकार का है– एक भाव बन्ध और दूसरा द्रव्य बन्ध – जिन राग द्वेष और मोह आदि विकारी भावों से कर्मों का बन्ध होता है, उन भावों को भाव बन्ध कहते हैं। कर्म पुद्गलों का आत्म प्रदेशों से सम्बन्ध होना द्रव्य बन्ध कहलाता है।

5. संवर : आस्रव का निरोध होना संवर है। जिन द्वारों से कर्मों का आस्रव होता था, उन द्वारों का निरोध करना संवर है।

6. निर्जरा : कर्मों का क्षय होना निर्जरा का लक्षण है। पूर्वबद्ध कर्मों का थोड़ा–थोड़ा, नष्ट करना निर्जरा है। यह दो प्रकार की है : 1. औपक्रमिक या अविपाक 2. अनौपक्रमिक या सविपाक तप आदि साधनाओं के द्वारा कर्मों का फल झड़ते जाना सविपाक (अनौपक्रमिक) निर्जरा है।

7. मोक्ष : समस्त कर्मों का छूट जाना मोक्ष कहलाता है। जीव समस्त कर्मबन्धन से छूट जाता है तो वह मुक्त जीव कहलाता है।
जीव और अजीव दो मूल तत्व है।
इनके संयोग से ही संसार की सृष्टि होती है।
संसार के मूल कारण आस्रव और बन्ध है।
संसार से मुक्त होने के कारण संवर और निर्जरा है।
संवर और निर्जरा के द्वारा जीव को जो पद प्राप्त होता है, वह मोक्ष है। यह मोक्ष ही जीव का चरम लक्ष्य है।

ब्रह्मण्डीय विचार
लोक (ब्रह्मण्ड स्वरूप) सृष्टि की रचना अदृश्य व चमत्कारिक रूप से मानी जाती है। हिन्दू धर्म में अनेक कथा कहानियां उपलब्ध है। हिन्दू धार्मिक मान्यता में माना गया है, प्रलय के कुछ समय पूर्व सृष्टि के सृजनकर्ता विष्णु ने मनुष्य को स्वप्न में दर्शन देकर एक नौका निर्माण का आदेश देकर सभी प्रजातियों के जोडे रखने को कहा। निश्चित समय पर भयंकर प्रलय आने पर विष्णु भगवान ने मछली का अवतार लेकर मनु व उनकी नौका को सुरक्षित रखा। इसके पश्चात् पुनः मनु व उनकी सन्तानों ने सृष्टि की रचना में पंच मुख्य भूमिका निभाई।

सृष्टि की रचना में पंच तत्व जल, थल, वायु, अग्नि, आकाश की प्रमुख भूमिका है और यही पांच तत्व मिलकर मनुष्य के शरीर का निर्माण करते हैं, परन्तु जैन धर्म में यह माना गया है कि यह सृष्टि षट् द्रव्यों से मिलकर बनी है। इसलिए जैन धर्म की सृष्टि की रचना संबंधी विचार भिन्न है। जैन धर्म के अन्तर्गत धर्म के अनुसार द्रव्य, आकाश का जितना भाग देखा जाये वह लोक कहलाता है।

जैन धर्म के अन्तर्गत ब्रह्मण्डीय स्वरूप की कल्पना वैज्ञानिक दृष्टिकोण से है। जैन दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भांति यह स्वीकार करता है कि पृथ्वी सौरमण्डल में स्थित है। इसके चारो और वायुमण्डल तथा ऊपर आकाश में सौरमण्डल है।

आचार्य उमास्वामी ने तत्वार्थ सूत्र के अन्तर्गत ब्रह्मण्डीय स्वरूप की व्याख्या करते हुए पृथ्वी व अन्य लोकों के बारे में वर्णन किया है।

जैन धर्म व दर्शन के अनुसार जो पदार्थों को देखे व जाने सो लोक है। जैन दर्शन में इस ब्रह्माण्ड में तीन लोक माने गए हैं। अधोलोक, मध्यलोक और उर्ध्वलोक।

अधोलोक का आकार वेत्रासन के समान है। मध्य लोक का आकार खड़े हुए मृदंग के ऊर्ध्वभाग जैसा है तथा ऊर्ध्वलोक का आकार खड़े हुए मृदंग के समान है।

लोक का विस्तार : – आचार्य उमास्वामी के अनुसार समस्त लोक राजू नामक ईकाई के द्वारा नापा जा सकता है। उनके अनुसार सम्पूर्ण लोक की ऊँचाई चौदह राजू है। जिसमें अधोलोक की ऊँचाई सात राजू है। मध्य लोक की ऊँचाई एक लाख योजन है। उर्ध्वलोक की ऊँचाई एक लाख योजन कम सात राजू है।
अधोलोक : अधोलोक के अन्तर्गत सात पृथ्वीयों का वर्णन किया गया है, जो एक–एक राजू के अन्तर में स्थित है। इनके निम्न नामों का उल्लेख तत्वार्थ सूत्र में किया गया है।
1. रत्नप्रभा : करभाग, पंक भाग, अक्ष बहुल यह तीन भाग है। इनके निम्न नामों का उल्लेख तत्वथिसूत्र में किया गया है। जिसकी क्रांति रत्नों के समान है। (1 लाख 80 हजार योजन मोटी है)
2. शर्कराप्रभा : जो शर्करा के समान प्रभा वाली भूमि है। (यह भूमि 32 हजार योजन मोटी है)
3. बालुकाप्रभा : जिसकी प्रभा बालुका के समान होती है। (28 हजार योजन मोटी)
4. पंकप्रभा : प्रभा काचड़ के समान है (10 लाख नरक हैं) (24 हजार योजन मोटी)
5. धूमप्रभा : जिसकी प्रभा धुंवा के समान है, वह घूम प्रभा भूमि है।
6. तमः प्रभा : जिसकी प्रभा अंधकार के समान है वह भूमि तम प्रभा है।
7. महातम प्रभा : इस भूमि में गहन अंधकार है।

इन पृथ्वीयों के अन्य नाम भी बतलाये गये है। धम्मा, वंशा, मेधा, अंजना, आरेष्टा, मघवा और माधवी।
तत्त्वार्थसूत्र में वर्णित ब्रह्माण्ड
तत्वार्थसूत्र में वर्णित ब्रह्मण्ड के अनुसार यह लोक जीव और जीवेतर पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल नामक 6 द्रव्यों सं संरचित है। और इसमें तीनों लोकों को ऊर्ध्वलोक , मध्यलोक और अधोलोक के नाम से जाना जाता हैं और इनको ही क्रमशः स्वर्गलोक, भूलोक और नरकलोक कहा जाता है।

लोक के अन्तर्गत ऊर्ध्वलोक में स्वर्गों की स्थिति के ऊपर क्रमशः नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर विमान है, जिनके ऊपर सिद्धशिला स्थित है तथा धनोदधि वातवलय, धनवातवलय और और तनुवातवलय तीनों लोकों को वलयित और स्थित किये हुए है। इस लोक का आकार पुरूषाकार हैं।

पृथ्वीलोक या भूलोक में अनेक पर्वत, द्वीप, नदियां, घाटियां आदि है। यहां पर मध्य में जम्बूद्वीप स्थित है और इस जम्बू द्वीप आप में समद्रु चारों ओर से खारे है। इस लवणीय समुद्र के अन्तर्गत उससे द्विगुणित विस्तार वाला धातकी खण्ड है। जो अपने से दुगुने विस्तार वाले कलोदधि समुद्र से घिरा है। कालोदधि समुद्र के अनन्तर पुष्करवर द्वीप है। इस प्रकार जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध द्धीप ढाई द्वीप नाम से जाना जाता है। इस ढाई द्वीप का ही मध्य भाग जम्बूद्वीप है।

इस ढाई द्वीप में पांच मेरू, पैंतीस क्षेत्र, तीस पर्वत, सत्तर महानदियां और 30 हद है। जम्बूद्वीप में चार और ढाई द्वीप में 20 महाविदेह है।

तत्वार्थ सूत्र के वर्णन के अनुसार जम्बूद्वीप में बत्तीस तथा चौतीस आर्यखण्ड है, इन्हीं आर्यखण्डो में पदवीधर, महापुरूष, तीर्थंकर आदि उत्पन्न होते हैं इसी जम्बूद्वीप में श्रेष्ठ शिखरों वाले छः कुलधर पर्वत है। जिनके नाम 1. हिमवन 2. महाहिमवन 3. निषध 4. नील 5. रूक्मि तथा 6 शिखरी है।

भरत क्षेत्र :
जम्बू द्वीप का ही एक क्षेत्र भरत क्षेत्र है। जिसमें पांच म्लेच्छ खण्ड और एक आर्य खण्ड है। आर्यखण्ड और म्लेच्छ खण्डों को पूर्व और पश्चिम में क्रमशः सिन्धु और गंगा नदी पृथक करती है। तथा उत्तर दिशा में विजयार्द्ध पर्वत है। इस क्षेत्र में 14 नदियां बहती है। जिनमें से भरत क्षेत्र में गंगा और सिन्धु नदियां बहती है।

हिमवत : यह भरत क्षेत्र की उत्तरी सीमा पर स्थित है। यह स्पष्ट रूप से हिमालय ही है। नदियां – भारत की स्थिति के साथ–साथ इसमें भारतमें बहने वाली नदियों का उल्लेख भी मिलता है। जहां सातों क्षेत्रों के मध्य जाने वाली गंगा, सिंधु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकांता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्ण, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा आदि नदियां है।
उर्ध्वलोक :
जैन धर्म के अनुसार ऊर्ध्वलोक, स्वर्गलोक के समान है जो कि सुमेरू पर्वत की चोटी से एक रेशे के अन्तर से प्रारम्भ हो जाता हैं।

REFERENCE
1. Aacharya Uma Swami: Tatvarth sutra chapter 3 page 47-48 Bhartiya Gyan Peeth Prakashan, New Delhi 2005 2. Aacharya Aklank: Tatvarth Rajvarthik chapter 3 Vartik 56 Bhartiya Gyan Peeth Prakashan, New Delhi 2007